International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 26-11-2019; Accepted: 29-12-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 80-82

पर्यावरणीय संकट एवं मानव विकास

विवेक कुमार पाण्डेय
शोधार्थी (पी-एच.डी,) अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
आज पृथ्वी का अंधाधुंध दोहन इस कदर बढ़ गया है कि मानव जीवन ही संकट के दलदल में फँस गया है। सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ मानव ने औद्योगिक क्षेत्र में भी खासी प्रगति की है। इसके लिए मानव ने प्रकृति पर नियंत्रण करना प्रारंभ किया, उसे अपना नियंता समझने के बजाय दास समझने लगा। जीवन को ज्यादा-से-ज्यादा आरामतलब बनाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का ज्यादा-से-ज्यादा दोहन किया जाने लगा। उसकी विलासितापूर्ण जीवनशैली ने प्राकृतिक हवा, पानी, मिट्टी आदि को दूषित कर दिया है, परिणामस्वरूप मानव जीवन संकट के बादल छाने लगे। मनुष्य अपनी जरूरत के हिसाब से नहीं, बल्कि उपभोक्तावादी संस्कृति, बाजारवादी अर्थव्यवस्था, नव-उदारवादी संस्कृति की चपेट में आकर प्रकृति के दोहन में जुटा हुआ है। इसी संस्कृति के परिणामस्वरूप औद्योगिकीकरण, मशीनीकरण की शुरुआत होती है, जो प्रकृति में असंतुलन को जन्म दे रही है। आज हम प्रकृति के साथ लुटेरे जैसा व्यवहार कर रहें हैं, जैसे वह कोई पराई वस्तु हो। परन्तु इसके परिणाम कितने भयावह होंगे इसका अंदाजा लगाना अभी मुश्किल है, शायद इंसान का ध्यान उस तरफ कम जा रहा है।

मुख्य शब्द : उपभोक्तावाद, बाजारवाद, अर्थव्यवस्था, नव-उदारवाद, पर्यावरण, सभ्यता, औद्योगिकरण।

प्रस्तावना

धरती को
माँ समझना
बस, माँ समझना ही है
उर्वरता को महसूस करना भी है
अपने को तलाशना भर ही है…

विलासिता और वैभवपूर्ण जिन्दगी जीने की चाह में आज हम सभी अंधी दौड़ में शामिल हैं। अधिक से अधिक पाने की चाह में इंसान इस तरह मशगूल हो गया है कि उसे यह भी नहीं पता कि वह अपने पीछे क्या छोड़ता चला जा रहा है? जिस प्रकृति ने इस धरती पर जीवन को संभव बनाया, रहने की जगह दी, खुले वातावरण में साँस लेने की सुविधा दी, फसल पैदा करने के लिए उपजाऊ जमीन दी उसी प्रकृति और धरती को मानव दिन-ब-दिन नष्ट करता जा रहा है। इंसानी गतिविधियों के चलते पर्यावरण को लगातार नुकसान हो रहा है। जंगलों की अंधाधुंध कटाई और अन्य गतिविधियों से धरती लगातार सिकुड़ती सी जा रही है। उपजाऊ जमीन कम होती जा रही है, धरती मरुस्थल में तब्दील होती जा रही है। दुनिया के कई देश बढ़ते मरुस्थलीयकरण और इसके चलते पैदा हो रही समस्याओं से जूझ रहे हैं। मरुस्थलीयकरण से लाखों लोग विस्थापित हो रहे हैं।
अब तक हुए शोध कार्यों के आधार पर पृथ्वी एकमात्र ऐसा ग्रह है, जहाँ जीवन जीने के लिए हवा, पानी, मिट्टी जैसी अपरिहार्य प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं। पृथ्वी पर जीवन इस कारण संभव है, क्योंकि यहाँ जल, कार्बन और उष्मा का एक ख़ास संतुलन है। इस प्रकृति में वह सब कुछ है जिसकी हमें आवश्यकता है। यहाँ मौजूद सभी जीव अपनी जरूरत के अनुसार प्रकृति का उपयोग करते हैं। हमें अपने पूर्वजों से जो प्राकृतिक संसाधन, वातावरण विरासत में मिले हैं, हमें उसे उसी रूप में या उससे बेहतर रूप में आने वाली पीढ़ी को सौंपना चाहिए। जो कल किसी और का था वह आज हमारा है, परन्तु कल वह किसी और का होगा। अर्थात् इस प्रकृति में सब कुछ व्याप्त है हमें उसका संयम से उपभोग करना चाहिए। ध्यान रहे "भारत अपने मूल स्वरूप में कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं। सर्वोच्च आकांक्षायें रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब कुछ भारत में मिल सकता है।" [1]
प्रकृति के अनुकूल खुद को ढालने की प्रक्रिया में भोजन, ऊर्जा एवं कपड़ों आदि की तलाश में गुजरती मानव जाति जीवनधारियों के प्राकृतिक वास स्थानों – जिनमें उसका खुद का आवास भी शामिल है – को लगातार प्रभावित कर रही है। मनुष्य के लुटेरे जैसे व्यवहार से निरन्तर वासस्थल में व्यापक परिवर्तन हो रहा है परिणामस्वरूप पौधों, जानवरों और सूक्ष्म जीवों अन्य प्रजातियों के जीवन में काफी नुकसान देखने को मिलता है। जब इंसान विज्ञान एवं तकनीक के माध्यम से वनस्पतियों एवं जीव जंतुओं का जीन परिवर्तन करते हैं तथा उसे अपने फायदे के लिए उपभोग करते हैं तो प्रकृति की विविधता संकट में पड़ जाती है। सबसे खतरनाक बात यह है कि इस रफ़्तार में वे प्रजातियाँ गायब होती जा रहीं हैं, जिन्हें हम जानते नहीं। "आजकल स्वच्छ व शुद्ध प्राकृतिक पर्यावरण दूषित हो रहा है, जिसके अनेक कारण हैं। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण, जनसंख्या में वृद्धि, अनियंत्रित औद्योगीकरण, अनियोजित कंक्रीट भवनों का निर्माण, पर्यावरण असंगत विकास योजनाएँ, परिवहन साधनों की संख्या में वृद्धि, खनन द्वारा खनिजों की प्राप्ति, जंगलों का नाश आदि के कारण पर्यावरणीय विघटन, प्रदुषण तथा पारिस्थितिकीय असंतुलित होते है।" [2] इसलिए मानव को समावेशी विकास पर बल देना चाहिए। यही भारतीय संस्कृति का मूल सार भी है जो हमेशा से प्रकृति के संरक्षण पर बल देती रही है।
यदि पर्यावरण संकट के कारण को जानने का प्रयास करें तो हमें निम्न कारण नज़र आते है- उपभोक्तावादी समाज, बाजारवाद, असमान व्यापार, संरक्षणवाद, बढती हुई जनसंख्या, औद्योगिकरण, शहरीकरण, शरणार्थी एवं पलायन, नव औपनिवेशिक शोषण, नाभिकीय विस्फोटों एवं दुर्घटनाओं, पूंजीवाद की ओर झुकाव और जेनेटिक इंजीनियरिंग आदि।
वर्तमान में पर्यावरण संकट का एक प्रमुख कारण उपभोक्तावादी संस्कृति है। उपभोग करने के विवेकहीन उत्साह पर आधारित उसकी जीवनशैली प्राकृतिक संसाधन को अत्यंत ही बेतुके ढंग से लूट रही है। इस पूंजीवादी संकृति में जरूरत के हिसाब से उत्पादन नहीं होता है, यहाँ तो मुनाफे के लिए उत्पादन होता है। "आदमी ने बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में पूंजी, सत्ता और तकनीक की समूची ताकत को अपनी मुट्ठियों में भर कर कहा था : स्वतंत्रता ! चीखते हुए आजादी ! अपनी सारी एषणाओं को जाग जाने दो. अपनी सारी इन्द्रियों को इस पृथ्वी पर खुल्ला चरने और विचरने दो. इस धरती पर जो कुछ है, तुम्हारे द्वारा भोगे जाने के लिए है। न कोई राष्ट्र है, न कोई भूमंडल तुम्हारा है।" [3] इन विकसित पूंजीवादी समाजों के मुख्य लक्ष्यों- मुनाफा, उपभोग की हवस और व्यक्तिगत खुशहाली का पर्यावरण के प्रति सरोकार से कोई मेल नहीं बैठता, क्योंकि यही इनकी मुख्य प्रेरक

शक्ति हैं।

व्यापार संरक्षणवाद उत्तर एवं दक्षिण की अर्थव्यवस्थाओं के बीच पर्यावरण संकट को उत्पन्न कर रहें हैं। इतना ही नहीं दक्षिण के देश, जिसे हम तीसरी दुनिया के देश कहते हैं इनकी अर्थव्यवस्था का मूल आधार कच्चे माल का निर्यात है। विकसित राष्ट्रों के विकास का संसाधन भी इन्हीं देशों से आयात किया जाता है। इसके अलावा अधिक आक्रामक संरक्षणवादी नीतियाँ और साथ ही इन मालों की कीमतों एवं लोगों की क्रय शक्ति में गिरावट होने से अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण को ही नुकसान पहुंचता है। तीसरी दुनिया की गरीबी का पर्यावरण के क्षरण से नजदीकी रिश्ता है। इन देशों की अर्थव्यवस्थाएँ मुख्यतः प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर आधारित हैं, लेकिन इन संसाधनों का समुचित दोहन करने के लिए आवश्यक वित्तीय एवं तकनीकी उपलब्धता का इन देशों में अभाव है। जिसकी वजह से इन देशों के सामने अक्षरशः अपने संसाधनों के अत्यधिक दोहन के अलावा गुज़ारा करने का कोई रास्ता नहीं बचता। पर्यावरण की तेजी से बिगड़ती स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों और तकनीक के अभाव के कारण यह कुप्रबंध और भी ज्यादा गरीबी को जन्म देता है। "पर्यावरण का नाश उपभोग संस्कृति की खतरनाक परिणति है। इसके कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, संवेदनात्मक, एवं आध्यात्मिक विचलन उत्पन्न होते हैं।" [4]

यदि हम तीसरी दुनिया के देशों में गरीबी के कारणों पर बात करें तो उसका एक कारण बढ़ती जनसंख्या वृद्धि और बेरोक-टोक बढ़ता शहरीकरण है। जिसके कारण पर्यावरण संकट से आज का मानव जूझ रहा है। गांवों में मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध न होने के कारण गांवों की एक बड़ी आबादी शहरों की ओर पलायन कर रही हैं। इससे अल्पविकसित राष्ट्रों में शहरीकरण और त्वरित गति से बढ़ता जा रहा है। इस अल्पविकास की हालत में शहरीकरण एक खास अर्थ ग्रहण कर लेता है। अपर्याप्त बुनियादी ढांचे के चलते शहरों में बसाव का अव्यवस्थित रूप से विकास होता है जो मुख्यतः झोपड़ पट्टी के रूप में हमारे सामने आता है। परिणामस्वरूप पर्यावरण के प्रदूषण और क्षरण के महत्त्वपूर्ण स्रोतों का सृजन होता है। इसी तरह शरणार्थी समस्या भी पर्यावरणीय समस्या को जन्म देती है। यथा अल्पविकास की समस्याओं, पिछड़ेपन, प्राकृतिक विपदाओं, उस देश के आंतरिक राजनीतिक संघर्ष, राष्ट्र के अंदर ही नृजातीय संघर्ष के कारण लोगों का एक बड़े पैमाने पर अन्य देशों में जाकर बसना। वस्तुत: उस नये स्थान को निवास के योग्य बनाने के लिए पानी का अत्यधिक उपयोग, मिट्टी एवं वनों का निरंतर कटाव किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप जैव विविधता का ह्रास होता जा रहा है।

पुनर्जागरण के पश्चात् जितना हमने सामाजिक क्षेत्र में प्रगति की उससे कहीं अधिक हमने विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में प्रगति की। इन विज्ञान एवं तकनीक के परिणामस्वरूप ही औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई। यूरोप एवं अमेरिका में हुई औद्योगिक क्रांति ने अल्पविकसित देशों में वनों की कटाई को और अधिक बढ़ावा दिया। साथ ही साथ औपनिवेशिक शासन के अधीन और उसके बाद बड़ी पूंजीवादी ताकतों के आर्थिक विस्तार के कारण तीसरी दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया गया। जिसकी वजह इमारती लकड़ी प्राप्त करने, वन भूमि को खेती की भूमि में बदलने के लिए, खाद्य पदार्थों एवं अत्यधिक कच्चे माल की जरूरतों में भी प्रकृति का दोहन किया गया। मानव सभ्यता एवं संस्कृति का ज्यों-ज्यों विकास हो रहा है, त्यों-त्यों उसकी ऊर्जा की जरूरतें भी बढ़ती जा रही हैं। इस ऊर्जा की आपूर्ति करने के लिए जीवाश्म ईंधन कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस का अत्यधिक मात्रा में दोहन किया जा रहा है। आज हम जरूरत से ज्यादा ऊर्जा का प्रयोग कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है साथ ही अत्यधिक मात्रा में बर्फ पिघलने से समुद्र का जलस्तर भी बढ़ रहा है। जीवाश्म ईंधन की प्रधानता पृथ्वी पर ग्रीन हाउस गैस के लिए जिम्मेदार है। विश्व की कुल व्यवसायिक ऊर्जा के भंडार की अधिकांश आपूर्ति जीवाश्म ईंधन से होती है। अगर हम ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करने वाली मुख्य गैस की बात करें तो कार्बन डाई आक्साइड इनमें प्रमुख है।

वैश्विक स्तर पर विकसित देश, औद्योगिक देश ही विश्व का तापमान बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार है। इनका विकास जीवाश्म ईंधन के अत्यधिक उपभोग पर आधारित है। यदि हम अल्पविकसित देश या तीसरी दुनिया के देशों की बात करें तो तापमान बढ़ाने में इनका मुख्य योगदान कार्बन-डाई आक्साइड का अत्यधिक उत्सर्जन जिसकी वजह वनों की अत्यधिक कटाई है। साथ ही परम्परागत जैव ईंधन जैसे लकड़ी का अकुशल एवं विवेकहीन इस्तेमाल भी कुछ हद तक ज़िम्मेदार है। इसके अलावा अल्पविकसित देशों में फसलों से उत्पन्न होने वाले मीथेन का उत्पादन विकसित देशों से अत्यधिक होता है। तीसरी दुनिया के देशों में होने वाला गैसों का उत्सर्जन मुख्यतः अल्पविकास, गरीबी, तकनीकी के अभाव के चलते हो रहा है। वहीं विकसित राष्ट्र औद्योगिक स्तर से होने वाले गैसों के उत्सर्जन के लिए काफी हद तक उनका अत्यधिक एवं फिज़ूलखर्ची भरा ऊर्जा का दुरुपयोग जिम्मेदार है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में दो महाशक्तियों का उदय हुआ अमेरिका(पूंजीवादी) तथा सोवियत संघ/रूस(साम्यवादी)। इससे पहले हमें यह भी याद रखना चाहिए कि जिस कारण या जब युद्ध का अंत हिरोशिमा एवं नागाशाकी पर हुए परमाणु हमले के बाद ही जापान ने आत्म समर्पण किया और इसके साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध का अंत हुआ। इस तरह विश्व युद्ध का अंत तो हो गया, परन्तु पर्यावरण के विनाश की शुरुआत भी हो गई। उसके बाद नये-नये परमाणु परीक्षण किए जाने लगे। शीत युद्ध के दौर में तो हथियारों के क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच होड़ मच गई, जो सम्पूर्ण मानवता के लिए एक खतरा पैदा करने वाला था।

वर्तमान विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों का झुकाव पूंजीवाद की तरफ बढ़ रहा है। साथ ही भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण के बाद तो मानव सभ्यता एवं संस्कृति में एकदम से बदलाव ही आ गया। अब प्रश्न यह उठता है कि इस विकास की प्रकृति क्या है? विकास अपने आप में एक साध्य है अथवा साधन? दरअसल मानव सभ्यता एवं संस्कृति का मूल आधार प्रकृति के संसाधनों पर टिका हुआ है। इस दोहन की दौड़ में हम यह भूल गए कि प्राकृतिक संसाधन केवल वर्तमान जनसंख्या के उपभोग के लिए नहीं है, वरन आने वाली पीढ़ियों का भी हिस्सा है। 'प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है किन्तु किसी के लालच को नहीं'(गाँधी) इस तरह हम चाहे जितना विकास क्यों न कर ले हमें संतुष्टि नहीं मिल सकती। प्रकृति की कीमत पर किए गए विकास का ही नतीजा है कि तमाम सुख-सुविधाओं होने के बावजूद मानव तनावग्रस्त है। क्या मानव को शांति इस ध्वनि प्रदूषण में नसीब है जहाँ सोते समय भी वाहनों का अनियंत्रित शोर उसकी नींद भंग कर देता है। आज सब कुछ प्रदूषित हो गया है- न शुद्ध हवा, न शुद्ध जल, न शुद्ध हम।

धूप का जंगल, नंगे पांवों, इक बंजारा करता क्या ?
रेत का दरिया, रेत के झरने, प्यास का मारा करता क्या ?
बादल-बादल आग लगी थी, छाया तरसे छाया को,
पत्ता-पत्ता सूख चुका है, पेड़ बेचारा करता क्या ?

यदि इसी तरह हम प्रकृति के संसाधनों को लूटते रहें, समय रहते कोई क़दम न उठायें तो हम आने वाली पीढ़ी के बच्चों / उन अभागों के लिए विरासत में एक ऐसा ग्रह छोड़ जाएंगे जो अंतत: रहने लायक नहीं होगा। इसलिए बेहतर यही होगा कि विकास की दौड़ में हम केवल उत्पादन की बढ़ोत्तरी को प्राथमिकता न दें, बल्कि व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता को ऊपर उठाने तथा उतरोत्तर नए मूल्य गढ़ने के उद्देश्य से किए गए सामाजिक-आर्थिक विकास में पर्यावरण को महत्त्व दें। समय आ गया है कि मानव प्रकृति की ओर लौटे। यहाँ लौटने का उद्देश्य यह नहीं है कि हम गुफाओं की ओर लौट जायें और आदम जनजाति जैसा जीवन बिताएं। उद्देश्य यह है कि प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठा कर चले। प्रकृति प्रेमी "आदिवासियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी जरूरतें सबसे कम हैं. वे प्रकृति और पर्यावरण का कम से कम नुकसान पहुंचाते है।" [5] स्वार्थपरता, दुनिया पर वर्चस्व कायम करने के मंसूबे, असंवेदनशीलता, गैर-जिम्मेदारी और फरेब बहुत हो चुका। जो काम मानव को बहुत पहले करना चाहिए था उसे आज से ही शुरू करना चाहिए, नहीं तो उसे करने के लिए बहुत देर हो चुकी होगी।

वर्तमान समय संवेदनाओं के क्षरण का दौर हैं, जहाँ मानव, मानव को ही नहीं समझ रहा है, ऐसे में पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों व नदियों की संवेदनाओं को मानव द्वारा महसूस करना अति आशावादा होगी। फिर भी उम्मीद की जा सकती है कि मानव अपनी गलतियों से सीख ज़रूर लेगा, वह अपनी जरूरतों को सीमित भी करेगा और लालचों को कम भी। प्रकृति को सहेज कर चलना ही सच्चे अर्थों में विकास होगा। पाश्चात्य पारिस्थितिक चिंतकों में ज्यादातर लोग इतिहास के बदले प्रकृति को स्थान देने वाले है पर उन्होंने यह स्पष्ट किया कि-"प्रकृति के संरक्षण का का मतलब प्राचीनता का संरक्षण नहीं है। इतिहास की उपेक्षा से काल की गति रुक जाती जाएगी। इसके फलस्वरूप पारिस्थितिक दर्शन किसी प्रागैतिहासिक युग की ओर वापसी और भूतकाल की पुनरावृत्ति बनकर सीमित हो जायेगा।" [6]

पर्यावरण संकट से निजात पाने के लिए इंसान लगातार प्रयास कर रहे हैं। आज वैश्विक मंच भी इस बात पर सहमत हैं कि Save Nature, Save Earth। इसके आलावा आम जन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए, 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस, 16 सितम्बर ओजोन दिवस, 22 मार्च को जल दिवस, 22 अप्रैल को पृथ्वी दिवस, 22 मई को जैव विविधता दिवस का आयोजन किया जाता है। "पर्यावरण की रक्षा के लिए 'ग्रीन पीस' जैसे जुझारू दल का प्रादुर्भाव पर्यावरण रक्षा के आन्दोलन में एक ऐतिहासिक घटना है। 'करो या मरो' के लिए समर्पित इस जुझारू दल ने संहारक सामग्री ले जाने वाले जहाजों का पीछा किया। भारत के 'चिपको' आन्दोलन का, जो इन सबसे (स्टॉकहोम की करवाई को छोड़ कर) पुराना और जमीन से जुड़ा हुआ, शहरी सभ्यता के प्रभाव से दूर हाशिए पर रहने वाले गरीब ग्रामीणों का आन्दोलन था।" [7]

निस्संदेह पर्यावरण संकट के समाधान के लिए एक सुस्पष्ट राजनीतिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। इसके अलावा प्रचुर वित्तीय संसाधनों, तकनीक की आवश्यकता है जो मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में मौजूद है और प्राप्त भी किए जा सकते है। इंसान को इसके संरक्षण पर विशेष ध्यान देना चाहिए और याद रखना चाहिए कि धरती हमारे पैरों को स्पर्श करना चाहती है, हवा हमारे बालों को सहलाना चाहती है तथा खिले हुए फूल कुछ और नहीं, बल्कि धरती की मुस्कराहट हैं। हमारी धरती की मुस्कराहट मलिन न हो इसके लिए हमें आज से ही प्रयास करना चाहिए। इसके लिए विकसित देश विकासशील देशों, तीसरी दुनिया के देशों के साथ मिलकर सहयोग एवं सामंजस्य के साथ काम करना चाहिए।

तुम्हारी तहजीब अपने खंजर से आप ही खुदखुशी करेगी
जो शाख-ए-नाज़ुक पे आशियाना बनेगा नापाएदार होगा…

संदर्भ सूची-

1. महात्मा गाँधी, मेरे सपनों का भारत, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृष्ठ-01
2. डॉ.ए.एस.सुमेष(सं), समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ-18
3. उदय प्रकाश, पीली छतरी वाली लड़की, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ-12
4. के.वनजा, साहित्य का परिस्थितिक दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ-11
5. उदय प्रकाश पीली छतरी वाली लड़की, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ-14
6. के. वनजा, साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-23
7. सुन्दर लाल बहुगुणा, धरती की पुकार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ-99